ओ३म् नमः शिवाय

मदनदहन भवभयगहनहरण शरण प्रभु एक।
असमनयन अघचयअनल सतत सदय अतिरेक ।।

विषमनयन समदृष्टि वीतराग नर्तक प्रथम।
करो कृपा की वृष्टि संहारक पर अति सदय ।।

प्रथम सर्ग

अंकुर

तमिस्त्रा[1] तम मग्न है यह राजपुर[2] प्रासाद[3]।
मलिनमुख ज्यों ढो रहा उर का विषम अवसाद[4]।
शासिका निस्तब्धता ही बनी मानो आज।
हो रहा विस्तृत अनुक्षण[5] एक उसका राज।।1।।

अकम्पित तरुवर खड़े ज्यों धार कर चिर मौन।
नम्रपर्णा[6] व्यथित श्लथ[7] सी पड़ी आज छितौन[8]।
ढरकते थे बड़े होकर पत्र से जल बिन्दु।
छिप गया था देखते ही यह दशा नवइन्दु।।2।।

लग रहा है तारकित नभ क्षेत्र बस विस्तीर्ण।
शुभ्र स्वप्नों के शकल[9] अनगिनत यत्र प्रकीर्ण।
टिमटिमाते और बुझते लग रहे उडु[10] वृन्द।
चित्रपट पर भाव से प्रस्फुटित होते मन्द।।3।।

भूलता सा लग रहा यह पंथ अब पवमान[11]।
जल रही लघु दीप की निष्कम्प[12] अर्चि समान।
कर रही है दीप्ति दुर्बल प्रबलतम से युद्ध।
अग्रसर होता निरन्तर निगलने हो क्रुद्ध।।4।।

मन्द आभा को समेटे मूक आयत[13] कक्ष।
देखता जलती सुकोमल कामनाएं लक्ष।
है पड़ी तन्वी[14] शयन पर धरे वसन वलक्ष[15]।
उठ रहा है साथ फिर फिर हिलकियों के वक्ष।।5।।

---

1. रात; 2. राजधानी; 3. राजमहल; 4. खिन्नता; 5. प्रतिक्षण; 6. झुके पत्तेवाली; 7. शिथिल; 8. सप्तपर्ण लता; 9. टुकड़े; 10. तारागण; 11. पवन; 12. लौ; 13. विस्तृत; 14. कोमलांगी सुन्दरी; 15. श्वेत।

शूरसेनसुता सदा जो पली सुख के बीच।
वह पृथा क्यों नयन जल से रही निज को सींच।
कुन्ति भोज नरेश का निश दिन मिला वात्सल्य।
कौन पा सकती यहाँ फिर कामना वैफल्य ।।6।।

उष्णता परिताप की ज्यों छोड़ती निःश्वास।
त्याग कर मुझको विपन्ना क्यों गयी हर आस।
वह निकलने को मचलता वक्ष से मम क्षीर।
उमड़ता है वेग से पल पल नयन का नीर ।।7।।

व्यर्थ ही क्यों बह रहे अनुताप[1] जल हो व्यग्र।
कोष भी यदि रिक्त कर दो निज अखण्ड समग्र।
नहीं क्षालन[2] क्षम रुको तुम बहुत गहरा अंक[3]।
अस्मिता सारी धंसी है पाप ही के पंक ।।8।।

हो नहीं पाया किलक रव से कभी मन मुग्ध।
व्यर्थ ही वक्षोज[4] मेरे धारते हैं दुग्ध।
एक पल को था विलोका तनय का शुभगात।
नहीं क्षण को विलग होता चित्त से नवजात ।।9।।

घने घुँघराले चमकते श्यामवर्णी केश।
गोल नीलम से गहन लोचन विचित्र विशेष।
कांति वपु की दिव्य ज्यों पीयूषमय भृंगार।
नव्य[6] किशलयवर्ण रदपुट[7] आस्य[8] के शृंगार ।।10।।

पेटिका में बंद कर अपने हृदय का खण्ड।
एक क्षण में कर गयी हा कृत्य मैं वह चण्ड।
हतप्रभ रह गयी भूली अश्ववेगा वेग।
हुआ पर दुर्दम्य मेरे हृदय का आवेग ।।11।।

---

1. पश्चाताप; 2. धोने में समर्थ; 3. कलंक 4. स्तन; 5. स्वर्ण कलश;
6. नवीन; 7. होठ; 8. मुख।

ले चली सुत को बहाकर अश्रु की ही धार।
देख भी पायी न बाधित हुआ दृष्टि प्रसार।
चली मुड़कर काँपते थे चरण बारम्बार।
परम दुर्वह[1] हो रहा था पाप का वह भार॥12॥

गयी क्षणदा[2] क्षणिक भी ले साथ मेरी शान्ति।
बन गया जीवन परम दुर्भेद्य ही बस भ्रान्ति।
बनीं जननी किन्तु केवल जना मैंने खेद।
कौन है जिसको बताऊँ पाप का यह भेद॥13॥

हृदय पर ढोना पड़ेगा पाप का यह अश्म[3]।
नहीं होती जब तलक यह देह जलकर भस्म।
कौन माता रिक्त करती स्वयं ही निज क्रोड़[4]।
कौन सकती जात[5] को इस विधि अरक्षित छोड़॥14॥

याद आता समय वह जब पधारे ऋषिराज।
तेज उनका देख आती दीप्ति को भी लाज।
कहा पितु ने रखो इनका पुत्रि प्रति क्षण ध्यान।
आशुकोपी[6] हैं बड़े ये व्यसन इनका ज्ञान॥15॥

अत्रि-अनुसूया तनय[7] ये तपः पूत शरीर।
कामना-रण के विजेता तपस्या रणधीर।
कर रहे षड्वर्गजय[8] थे तभी मानो कोप।
आ गया इनकी शरण में बचाने निज लोप॥16॥

आसरा पा तपो निधि का हो गया विकराल।
विजृम्भित[9] होता कभी तो प्रकट होता काल।
आ गए स्वयमेव पुर में करेंगे कुछ याग।
प्रीत[10] होकर यदि गए जागें जनों के भाग॥17॥

---

1. जो ढोया न जा सके; 2. रात्रि; 3. पत्थर; 4. गोद; 5. पुत्र; 6. शीघ्र क्रुद्ध होने वाला; 7. पुत्र; 8. काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य इन छः शत्रुओं का समूह; 9. बढ़ना; 10. प्रसन्न।

करो परिचर्या[1] सतत् प्रमुदित हुए ऋषिश्रेष्ठ।
कहा आर्यों की सुताओं में बनेगी ज्येष्ठ।
हे सुशीले सुश्रूषापर[2] बड़ी तू है धीर।
दिव्य होंगे सभी सुत तेरे यशस्वी वीर ।।18।।

धीरता की ही परीक्षा ले रहे प्रभु आप।
दिव्यता सुत की बनी हा घोरतम अभिशाप।
शील भी अब है कहाँ मैं खो चुकी सम्पूर्ण।
देखती प्रत्यक्ष होते स्वप्न क्रमशः चूर्ण ।।19।।

क्रूर यह अभिशाप कैसा दिया वर के व्याज[3]।
दीर्घ सेवा जन्य प्रतिफल यही था ऋषिराज।
बड़ी अनुकम्पा करी देकर अनूठा मंत्र।
नियति[4] ने मुझको बनाया मात्र क्रीड़ा यंत्र ।।20।।

दोष तो मेरा बताओ दयाधाम मुनीश।
आ पड़ा क्यों बोझ पातक का हमारे शीश।
क्यों बनायी देव अबला जगत में परतंत्र।
कामना की तृप्ति का ही बनी नर को यंत्र ।।21।।

वीर जननी मैं बनूंगी दिया आशीर्वाद।
भाग्य में मेरे लिखा था घोर तम परिवाद[5]।
वीर माता ही बनी हूं त्याग शिशु को आज।
आ रही मातृत्व को भी देख मुझको लाज ।।22।।

मिले सविता[6] किया जब ऋषिदत्त मंत्र प्रयोग।
मानवी का अदितिसुत[7] से हो गया संयोग।
दिव्यता ने किया जिस क्षण मृत्तिका परिरम्भ[8]।
बीज चिन्ता का पड़ा था खेद का आरम्भ ।।23।।

---

1. सुश्रूषा; 2. सेवारत; 3. बहाना; 4. भाग्य; 5. लोक निन्दा; 6. सूर्य; 7. अदिति के पुत्र आदित्य जिनमें एक सूर्य है; 8. आलिंगन।

प्रभाकर तमशत्रु जिस दिन मिले तिग्ममरीचि[1]।
तमार्णव[2] मनमध्य लहराता समुच्छलवीचि[3]।
डूबती फिर तैरती है जहां जीवन-नाव।
वेदना ही जहाँ फैली धार द्रव का भाव ।।24।।

करूँ समृति-रज्जु से मंथित तमोमय अब्धि[4]।
अन्ततः होती प्रदाहक गरल की उपलब्धि।
नीललोहित[5] भी न करते कभी कुछ अनुक्रोश[6]।
हो गए वे भी विमुख बहु देख मेरे दोष ।।25।।

शक्ति का संवरण[7] करता क्या कभी चापल्य[8]।
शल्य[9] बनकर सालता है कभी तो सारल्य।
पड़ी जब जब शक्ति है अज्ञानियों के हाथ।
नियति परिणीता[10] हुई है प्रलय के ही साथ ।।26।।

गर्भ का क्रमशः बढ़ा दुर्गोप्य[11] वह आकार।
त्रपा[12] का होता गया शतगुणित[13] दुर्वह भार।
पाण्डुता वपु को बढ़ाती घोर चिन्ता नित्य।
सजग रहती सतत् प्रज्ञा छिपाने यह कृत्य ।।27।।

उबलती अन्तर[14] निरन्तर वेदना यह गूढ़।
तात भी थे चकित होते देख मुझको मूढ़।
दोष गोपन से न दुष्कर जगत में कुछ कार्य।
करूँ पर किसको प्रकाशन प्रश्न यह सुविचार्य ।।28।।

गोद ली मैंने सुता पर हाय उसका कृत्य।
आचरण ऐसा न करते यहां चेरी-भृत्य।
क्या दशा होगी पिता की हुआ यदि यह ज्ञान।
विकल हो जाती परम आता तभी यह ध्यान ।।29।।

---

1. तीक्ष्ण किरणों वाला (सूर्य); 2. अंधेरे का समुद्र; 3. उफनती तरंगों वाला; 4. सागर; 5. शिव; 6. दया; 7. आवरण; 8. चपलता; 9. कांटा 10. विवाहित; 11. कठिनाई से छिपाने योग्य; 12. लज्जा; 13. सौ गुना; 14. हृदय।

प्रसूता के लिए जो क्षण वेदना का अन्त।
आ गया मम हेतु बन परिदेवना[1] अत्यंत।
साधनानवमासफल सत्वर[2] किया जलक्षिप्त।
हो न जाए यह पृथा अब हे प्रभो विक्षिप्त ।।30।।

कभी तो मैं स्वयं को पाती नहीं पहचान।
कालिमा सी गहन मुख पर लिपी होती भान।
आवरण इतने सृजे हैं छिपा प्राकृत[3] रूप।
ज्ञात है किसको लताओं से ढका यह कूप ।।31।।

पन्नगी[4] दल साथ क्रीड़ा कर रही थी रात।
स्वप्न में हर्षित बड़ी देखी अनूठी बात।
जीभ का लगता चिरा सा कभी मुझको अग्र।
निकलते से भासते विषरदन[5] परम उदग्र ।।32।।

रुदन तेरा गूँजता है तनय कानों बीच।
देखती हूं छवि निरन्तर पलकद्वय को मींच।
अंग और उपांग तेरे साधु[6] मुझको याद।
करूण होकर श्रवण करती जब किलक का नाद ।।33।।

बूंद भर भी नहीं तूने चखा मम स्तन्य[7]।
दूर होकर इस कुमाता से हुआ तू धन्य।
मैं तमोमय बिम्ब भर तू अंशुमाली[8] अंश।
पूत तू है पूत[9] पूरित पापमय मैं कंश[10] ।।34।।

भाल में तेरे लिखा विधि ने चिरंतन अंक[11]।
भेंट में जिस दिन दिया इस पापिनी के अंक[12]।
बंदिनी कुल कीर्ति की यह जगत कारागार।
ढो रही जीवन नहीं निज घात का अधिकार ।।35।।

---

1. रोना धोना; 2. शीघ्र; 3. वास्तविक; 4. सर्पिणी 5. विष दन्त; 6. अच्छी तरह; 7. दूध; 8. सूर्य; 9. पवित्र; 10. कलश; 11. कलंक; 12. गोद।

त्याग से जीवन तुम्हारा है हुआ आरम्भ।
त्याग के ही सुत बनो तुम जगतमानस्तम्भ।
तजा तेरे साथ ही सुख और त्यागी शांति।
हे नियति मेरे लिए मत धारना तू क्षांति ।।36।।

हे तटिनि[1] उसको झुलाना पालना असहाय।
कर दिया मैंने स्वतः होकर परम निरुपाय।
मंद गति बहना उठाना नहीं तीव्र तरंग।
भींगने पाएँ न शिशु के परम कोमल अंग ।।37।।

उर्मि[2] केवट दारूनिर्मित पेटिका है नाव।
बह चला मातृत्व ही मम धार द्रव का भाव।
दिशादर्शक है समय जब पवन ही पतवार।
वत्स जाओ दूर मैं हूँ कलुष[3] की अवतार ।।38।।

अभी मुझको भी न जाने है अतीव अबोध।
नहीं कर सकता मशक[4] का भी अभी प्रतिरोध।
दैव कर लेना प्रचुर हतभागिनी पर क्रोध।
किन्तु पहुँचाना सुरक्षित इसे है अनुरोध ।।39।।

पंथ लम्बा मृदुल वपु है अनिश्चित गंतव्य।
त्रिलोचन[5] ही जान सकते तनुज का भवितव्य।
अश्रु ही पाथेय इसके सिसकियां हैं वित्त।
पयस्विनि[6] सौंपा तुम्हें करना दया अनिमित्त[7] ।।40।।

यज्ञ धारा से हुई हैं देवि आप प्रसूत।
गोद में चर्मण्वती[8] है आज मेरा पूत।
अमलता इतनी न होता गहनता का भान।
आज रखना देवि अपनी दिव्यता का मान ।।41।।

---

1. नदी; 2. लहर; 3. पाप; 4. मच्छर; 5. शिवजी; 6. नदी; 7. विना कारण;
8. चम्बल नदी।

सघन वन उत्खात-भू आए बढ़ाना चाल।
हिंस्र पशु कृत गर्जना से भीत होगा बाल।
पेटिका को तटिनि रखना कूल से तुम दूर।
रुदन सुन झपटे न कोई सत्व[1] वन का क्रूर ।।42।।

सप्तसप्तिसुता[2] तुम्हें क्या तथ्य है यह ज्ञात।
पेटिकाशायी बहातीं जा रहीं जो जात।
वह तुम्हारा ही अनुज रखना तुम्हें है ध्यान।
लगे यदि रोने बटायें हंस उसका ध्यान ।।43।।

इस अनुज के साथ क्रीड़ा तुम्हें होगी कान्त[3]।
उमड़ना मत हर्ष से रहना तुम्हें है शान्त।
देख लेना दूर से छूना न इसका गात[4]।
देवकीसुतवत नहीं हैं साथ इसके तात ।।44।।

यदि हिले पेटी बनो कच्छप तुम्हीं आधार।
धार लोस करूण पृथा की भूल का यह भार।
नहीं ममता का हमारी मिटे यह संसार।
कूर्म[5] वत मेरा करो दुख-सिन्धु से उद्धार ।।45।।

देख लें इसको न तिग्ममरीचि[6] तुम हे कंद[7]।
आवरण बनना चलाना पवन पर कुछ मंद।
गरजना मत तुम दया कर मत गिराना नीर।
भाव उमँगें तो दबाना ज्यों पृथा निज क्षीर ।।46।।

मन्द बहना जननि तव मन्दाकिनी[8] है नाम।
दिए पहुंचा तटिनि तुमने वसु स्वयं के धाम।
सौंप देना सुत किसी ममतामयी के हाथ।
पालना या हरतनयसम[9] तुष्ट हों भवनाथ ।।47।।

---

1. प्राणी; 2. सूर्य पुत्री यमुना; 3. प्रिय; 4. शरीर; 5. कच्छप अवतार (विष्णु का); 6. सूर्य; 7. बादल; 8. गंगा; 9. कार्तिकेय।

कहीं कोई मकर भी आने न पाए पास।
डूबने मत देवि देना तुम कुमाता आस।
स्यात् मिल जाए कहीं कोई दया-आगार।
पेटिका शायी तनय को मान विधि-उपहार ।।48।।

लगा ने उर से इसे उमड़े अमल[1] वात्सल्य।
देख निश्छल रूप पाए दृष्टि भी साफल्य।
मिटा ले अपनी तृषा कोई अपुत्रा दीन।
सुखी हो वह तोष मेरा तो लिया विधि छीन ।।49।।

शर्वरी[2] तेरे बहुत मुझ पर रहे उपकार।
खोलती निश्चिन्त हो मम वेदना निज द्वार।
एक अंचल ही तुम्हारा कर रहा आश्वस्त।
बन गयीं मेरी सहेली रजनि तुम विश्वस्त ।।50।।

एक अभिनय निरत बाला पा तुम्हारी क्रोड़।
प्रकृत पाती रूप अपना जगत शंका छोड़।
उमड़ पड़ती भाव सरिता पा प्रहर एकान्त।
भँवर मानस में उठाकर पुनः होती शान्त ।।51।।

बरस जाते नयन मानस-व्योम होता व्यभ्र[3]।
उमड़ पड़ते पुनः क्षण में शोक के घन अभ्र[4]।
अरति[5]-सागर की गहनता असीमित विस्तार।
मापता है जीवनोडुप[6] उर्मि[7] का आकार ।।52।।

कृपा दाहक अरुन्तुद[8] ऐसा अनुग्रह चित्र[9]।
कौन जग में आपके अतिरिक्त करता मित्र[10]।
राहु से सविशेष सविता ग्रहण करके सृष्ट।
ग्रहण ऐसा जीवनावधि जो न होगा भ्रष्ट ।।53।।

---

1. पवित्र; 2. रात्रि; 3. मेघरहित; 4. बादल; 5. दुख; 6. जीवन रूपी नौका; 7. लहर; 8. हृदयभेदी, मर्मच्छेदी; 9. विचित्र; 10. सूर्य।

चंचला स्त्रोतस्विनी[1] सी बह रही निर्बाध।
हरा जीवन रस समूचा पूर्ण की यह साध।
जली जीवन वाटिका खर[2] ताप इतना झेल।
चल रहा मरुभूमि में अब भी नियति का खेल ।।54।।

कभी लगता भेद मेरा सब चुके हैं जान।
झाँकता मेरे लिए हर दृष्टि में अपमान।
पूछते प्रतिपात जैसे अर्क होकर लाल।
पृथा दिव्य तनुत्रधारी[3] है कहाँ मम लाल ।।55।।

कह रहे कैसा किया मम कृपा का अपमान।
मसृण[4] वपु में है कठिन उर था मुझे क्या भान।
अब सदा तम से रहेगी तुम्हारी पहचान।
कभी क्या वामा[5] गुणों को जगत पाया जान ।।56।।

मानिनी बन कर खड़ी हर खुशी मुझसे रूठ।
सतत् छलती जगत को मैं ओढ़कर बस झूठ।
अभी तक जो थी सहेली हुई क्षण में दूर।
देख ली क्या सुतघ्नी[6] मम भंगिमा वह क्रूर ।।57।।

मृषा[7] यह लोकोक्ति निश्चय काल भरता घाव।
अनुदिवस बढ़ता पृथामानस व्रणोत्थ[8] रिसाव।
उतरती मानस पटल पर नित्य नवता धार।
स्वैरिणी[9] यह वेदना करती यथेच्छ विहार ।।58।।

---

1. नदी; 2. तीक्ष्ण; 3. कवच धारण करने वाला; 4. चिकना; 5. स्त्री; 6. पुत्र घातिनी; 7. असत्य; 8. घाव से उठने वाला; 9. स्वेच्छाचारिणी।

(घनाक्षरी)

देखती हूँ पक्षिणी भी बेटों को चुँगाती हुई
गौ को देखती हूँ चाटते मैं वत्स भाल को।
प्रकृति भी जैसे है जताती तुझे बार-बार,
कैसे हर प्राणी पालता है निज लाल को।

छौने को न छोड़ती है दौड़ती है मारने को,
मृगी जान के भी शार्दूल[1] रूप काल को।
विपदा में डालने को अपने ही लाड़ले को,
मेरे जैसी माता ने रचा है कैसे जाल को ।।59।।

स्वार्थपरा होती न तो सुत को लगा के वक्ष,
निभृत[2] अकेली कहीं जाती किसी वन में।
ममता की छाया शीत वक्ष का दे क्षीर उष्ण,
पालती मैं पुत्र लाती खेद नहीं मन में।
हँस-हँस सारी वय झेलती अनेक कष्ट,
पीती चाहे अश्रु खाती केवल पवन मैं।
भुवन में कौन और माता होगी मेरे जैसी,
भोग भोगती है त्याग वत्स को विजन[3] में ।।60।।

□□

1. व्याघ्र; 2. चुपचाप छिपकर; 3. निर्जन स्थान में।